श्री राम-कौसल्या-सीता संवाद

चौपाई :

*** अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन बियोगु न सकी सँभारी॥ देखि दसा रघुपति जियँ जाना। हठि राखें नहिं राखिहि प्राना॥1॥

भावार्थ:

ऐसा कहकर सीताजी बहुत ही व्याकुल हो गईं। वे वचन के वियोग को भी न सम्हालसकीं। (अर्थात शरीर से वियोग की बात तो अलग रही, वचन से भी वियोग की बात सुनकर वे अत्यन्त विकल हो गईं।) उनकी यह दशा देखकर श्री रघुनाथजी ने अपने जी में जान लिया कि हठपूर्वक इन्हें यहाँ रखने से ये प्राणों को न रखेंगी॥1॥

*** कहेउ कृपाल भानुकुलनाथा। परिहरि सोचु चलहु बन साथा॥ नहिं बिषाद कर अवसरु आजू। बेगि करहु बन गवन समाजू॥2॥

भावार्थ:

तब कृपालु, सूर्यकुल के स्वामी श्री रामचन्द्रजी ने कहा कि सोच छोड़कर मेरे साथ वन को चलो। आज विषाद करने का अवसर नहीं है। तुरंत वनगमन की तैयारी करो॥2॥

*** कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु पद आसिष पाई॥ बेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई॥3॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी ने प्रिय वचन कहकर प्रियतमा सीताजी को समझाया। फिर माता के पैरों लगकर आशीर्वाद प्राप्त किया। (माता ने कहा-) बेटा! जल्दी लौटकर प्रजा के दुःख को मिटाना और यह निठुर माता तुम्हें भूल न जाए॥3॥

*** फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहउँ नयन मनोहर जोरी। सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन बिधु जोइहि॥4॥

भावार्थ:

हे विधाता! क्या मेरी दशा भी फिर पलटेगी? क्या अपने नेत्रों से मैं इस मनोहर जोड़ी को फिर देख पाऊँगी? हे पुत्र! वह सुंदर दिन और शुभ घड़ी कब होगी जब तुम्हारी जननी जीते जी तुम्हारा चाँद सा मुखड़ा फिर देखेगी!॥4॥

दोहा :

*** बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुबर तात। कबहिं बोलाइ लगाइ हियँ हरषि निरखिहउँ गात॥68॥

भावार्थ:

हे तात! 'वत्स' कहकर, 'लाल' कहकर, 'रघुपति' कहकर, 'रघुवर' कहकर, मैं फिर कब तुम्हें बुलाकर हृदय

से लगाऊँगी और हर्षित होकर तुम्हारे अंगों को देखूँगी!॥68॥

चौपाई :

*** लखि सनेह कातरि महतारी। बचनु न आव बिकल भइ भारी॥ राम प्रबोधु कीन्ह बिधि नाना। समउ सनेहु न जाइ बखाना॥1॥

भावार्थ:

यह देखकर कि माता स्नेह के मारे अधीर हो गई हैं और इतनी अधिक व्याकुल हैं कि मुँह से वचन नहीं निकलता। श्री रामचन्द्रजी ने अनेक प्रकार से उन्हें समझाया। वह समय और स्नेह वर्णन नहीं किया जा सकता॥1॥

*** तब जानकी सासु पग लागी। सुनिअ माय मैं परम अभागी॥ सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥2॥

भावार्थ:

तब जानकीजी सास के पाँव लगीं और बोलीं- हे माता! सुनिए, मैं बड़ी ही अभागिनी हूँ। आपकी सेवा करने के समय दैव ने मुझे वनवास दे दिया। मेरा मनोरथ सफल न किया॥2॥

*** तजब छोभु जनि छाड़िअ छोहू। करमु कठिन कछु दोसु न मोहू॥ सुनिसिय बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहौं बखानी॥3॥

भावार्थ:

आप क्षोभ का त्याग कर दें, परन्तु कृपा न छोड़िएगा। कर्म की गति कठिन है, मुझे भी कुछ दोष नहीं है। सीताजी के वचन सुनकर सास व्याकुल हो गईं। उनकी दशा को मैं किस प्रकार बखान कर कहूँ!॥3॥

*** बारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही॥ अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा॥4॥

भावार्थ:

उन्होंने सीताजी को बार-बार हृदय से लगाया और धीरज धरकर शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया कि जब तक गंगाजी और यमुनाजी में जल की धारा बहे, तब तक तुम्हारा सुहाग अचल रहे॥4॥

दोहा :

*** सीतहि सासु आसीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार। चली नाइ पद पदुम सिरु अति हित बारहिं बार॥69॥

भावार्थ:

सीताजी को सास ने अनेकों प्रकार से आशीर्वाद और शिक्षाएँ दीं और वे (सीताजी) बड़े ही प्रेम से बार-बार चरणकमलों में सिर नवाकर चलीं॥69॥ श्री राम-लक्ष्मण संवाद

चौपाई :

*** समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए॥ कंप पुलक तन नयन सनीरा।

गहे चरन अति प्रेम अधीरा॥1॥

भावार्थ:

जब लक्ष्मणजी ने समाचार पाए, तब वे व्याकुल होकर उदास मुँह उठ दौड़े। शरीर काँप रहा है, रोमांच हो रहा है, नेत्र आँसुओं से भरे हैं। प्रेम से अत्यन्त अधीर होकर उन्होंने श्री रामजी के चरण पकड़ लिए॥1॥

*** कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीन जनु जल तें काढ़े॥ सोचु हृदयँ बिधि का होनिहारा। सबु सुखु सुकृतु सिरान हमारा॥2॥

भावार्थ:

वे कुछ कह नहीं सकते, खड़े-खड़े देख रहे हैं। (ऐसे दीन हो रहे हैं) मानो जल से निकाले जाने पर मछली दीन हो रही हो। हृदय में यह सोच है कि हे विधाता! क्या होने वाला है? क्या हमारा सब सुख और पुण्य पूरा हो गया?॥2॥

*** मो कहुँ काह कहब रघुनाथा।रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा॥ राम बिलोकि बंधु कर जोरें। देह गेहसब सन तृनु तोरें॥3॥

भावार्थ:

मुझको श्री रघुनाथजी क्या कहेंगे? घर पर रखेंगे या साथ ले चलेंगे? श्री रामचन्द्रजी ने भाई लक्ष्मण को हाथ जोड़े और शरीर तथा घर सभी से नाता तोड़े हुए खड़े देखा॥3॥

*** बोले बचनु राम नय नागर। सील सनेह सरल सुख सागर॥ तात प्रेम बस जनि कदराहू। समुझि हृदयँ परिनाम उछाहू॥4॥

भावार्थ:

तब नीति में निपुण और शील, स्नेह, सरलता और सुख के समुद्र श्री रामचन्द्रजी वचन बोले- हे तात! परिणाम में होने वाले आनंद को हृदय में समझकर तुम प्रेमवश अधीर मत होओ॥4॥

दोहा :

*** मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ। लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ॥70॥

भावार्थ:

जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामी की शिक्षा को स्वाभाविक ही सिर चढ़ाकर उसका पालन करते हैं, उन्होंने ही जन्म लेने का लाभ पाया है, नहीं तो जगत में जन्म व्यर्थ ही है॥70॥

चौपाई :

*** अस जियँ जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई॥ भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं। राउ बृद्ध मम दुखु मन माहीं॥1॥

भावार्थ:

हे भाई! हृदय में ऐसा जानकर मेरी सीख सुनो और माता-पिता के चरणों की सेवा करो। भरत

और शत्रुघ्न घर पर नहीं हैं, महाराज वृद्ध हैं और उनके मन में मेरा दुःख है॥1॥

*** मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा॥ गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहुँ परइ दुसह दुख भारू॥2॥

भावार्थ:

इस अवस्था में मैं तुमको साथ लेकर वन जाऊँ तो अयोध्या सभी प्रकार से अनाथ हो जाएगी। गुरु, पिता, माता, प्रजा और परिवार सभी पर दुःख का दुःसह भार आ पड़ेगा॥2॥

*** रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू॥ जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥3॥

भावार्थ:

अतः तुम यहीं रहो और सबका संतोष करते रहो। नहीं तो हे तात! बड़ा दोष होगा। जिसके राज्य में प्यारी प्रजा दुःखी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है॥3॥

*** रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भए ब्याकुल भारी॥ सिअरें बचन सूखि गए कैसें। परसत तुहिन तामरसु जैसें॥4॥

भावार्थ:

हे तात! ऐसी नीति विचारकर तुम घर रह जाओ। यह सुनते ही लक्ष्मणजी बहुत ही व्याकुल हो गए! इन शीतल वचनों से वे कैसे सूख गए, जैसे पाले के स्पर्श से कमल सूख जाता है!॥4॥

दोहा :

*** उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ। नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ॥71॥

भावार्थ:

प्रेमवश लक्ष्मणजी से कुछ उत्तर देते नहीं बनता। उन्होंने व्याकुल होकर श्री रामजी के चरण पकड़ लिए और कहा- हे नाथ! मैं दास हूँ और आप स्वामी हैं, अतः आप मुझे छोड़ ही दें तो मेरा क्या वश है?॥71॥

चौपाई :

*** दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं॥ नरबर धीर धरम धुर धारी। निगम नीति कहुँ ते अधिकारी॥1॥

भावार्थ:

हे स्वामी! आपने मुझे सीख तो बड़ी अच्छी दी है, पर मुझे अपनी कायरता से वह मेरे लिए अगम (पहुँच के बाहर) लगी। शास्त्र और नीति के तो वे ही श्रेष्ठ पुरुष अधिकारी हैं, जो धीर हैं और धर्म की धुरी को धारण करने वाले हैं॥1॥

*** मैं सिसु प्रभु सनेहँ प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला॥ गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥2॥

भावार्थ:

मैं तो प्रभु (आप) के स्नेह में पला हुआ छोटा बच्चा हूँ कहीं हंस भी मंदराचल या सुमेरु पर्वत को उठा सकते हैं! हे नाथ! स्वभाव से ही कहता हूँ, आप विश्वास करें, मैं आपको छोड़कर गुरु, पिता, माता किसी को भी नहीं जानता॥2॥

*** जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥ मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥3॥

भावार्थ:

जगत में जहाँ तक स्नेह का संबंध, प्रेम और विश्वास है, जिनको स्वयं वेद ने गाया है- हे स्वामी! हे दीनबन्धु! हे सबके हृदय के अंदर की जानने वाले! मेरे तो वे सब कुछ केवल आप ही हैं॥3॥

*** धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥ मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥4॥

भावार्थ:

धर्म और नीति का उपदेश तो उसको करना चाहिए, जिसे कीर्ति, विभूति (ऐश्वर्य) या सद्गति प्यारी हो, किन्तु जो मन, वचन और कर्म से चरणों में ही प्रेम रखता हो, हे कृपासिन्धु! क्या वह भी त्यागने के योग्य है?॥4॥

दोहा :

*** करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु बचन बिनीत। समुझाए उर लाइ प्रभु जानि सनेहँ सभीत॥72॥

भावार्थ:

दया के समुद्र श्री रामचन्द्रजी ने भले भाई के कोमल और नम्रतायुक्त वचन सुनकर और उन्हें स्नेह के कारण डरे हुए जानकर, हृदय से लगाकर समझाया॥72॥

चौपाई :

*** मागहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥ मुदित भए सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी॥1॥

भावार्थ:

(और कहा-) हे भाई! जाकर माता से विदा माँग आओ और जल्दी वन को चलो! रघुकुल में श्रेष्ठ श्री रामजी की वाणी सुनकर लक्ष्मणजी आनंदित हो गए। बड़ी हानि दूर हो गई और बड़ा लाभ हुआ॥1॥

*** हरषित हृदयँ मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए॥ जाइ जननि पग नायउ माथा। मनु रघुनंदन जानकि साथा॥2॥

भावार्थ:

वे हर्षित हृदय से माता सुमित्राजी के पास आए, मानो अंधा फिर से नेत्र पा गया हो। उन्होंने जाकर माता के चरणों में मस्तक नवाया, किन्तु उनका मन रघुकुलको आनंद देने वाले श्री

रामजी और जानकीजी के साथ था॥2॥

*** पूँछे मातु मलिन मन देखी। लखन कही सब कथा बिसेषी। गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा॥3॥

भावार्थ:

माता ने उदास मन देखकर उनसे (कारण) पूछा। लक्ष्मणजी ने सब कथा विस्तार से कह सुनाई। सुमित्राजी कठोर वचनों को सुनकर ऐसी सहम गईं जैसे हिरनी चारों ओर वन में आग लगी देखकर सहम जाती है॥3॥

*** लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहिं सनेह सब करब अकाजू॥ मागत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं॥4॥

भावार्थ:

लक्ष्मण ने देखा कि आज (अब) अनर्थ हुआ। ये स्नेह वश काम बिगाड़ देंगी! इसलिए वे विदा माँगते हुए डर के मारे सकुचाते हैं (और मन ही मन सोचते हैं) कि हे विधाता! माता साथ जाने को कहेंगी या नहीं॥4॥

दोहा :

*** समुझि सुमित्राँ राम सिय रूपु सुसीलु सुभाउ। नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ॥73॥

भावार्थ:

सुमित्राजी ने श्री रामजी और श्री सीताजी के रूप, सुंदर शील और स्वभाव को समझकर और उन पर राजा का प्रेम देखकर अपना सिर धुना (पीटा) और कहा कि पापिनी कैकेयी ने बुरी तरह घात लगाया॥73॥